International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 226-227

वैदिक युगीन शिल्प कला : एक अध्ययन

उमेश कुमार
इतिहास, प्राध्यापक, रा0व0मा0वि0, जसराना, सोनीपत, हरियाणा, भारत।

सारांश

भारतीय सभ्यता का प्राचीन रूप जानने के लिए वैदिक ग्रन्थों की उपयोगिता नितांत महत्तवपूर्ण है। वेदों एवं उत्तरवर्ती ग्रन्थों के अनुशीलन से वैदिक काल की समुन्नत आर्थिक एवं राजनीतिक अवस्था संबंधी अवधारणाओं का विवरण प्रयाप्ति रूप से उपलब्ध होता है। वेदो के अनेक मंत्रों में राष्ट्र की प्रतिष्ठता व सुदृढता और राष्टीय गौरव का आधार आर्थिक समुन्निती को माना गया है। राजा के कर्तव्यों में निर्दिष्ट किया जाता था कि उसे कृषि की उन्नति जनकल्याण, आर्थिक उन्नति व राष्ट सौंपा जा रहा है।[1]

मूल शब्द : शिक्षा, भारतीय प्राचीन सभ्यता, परम्परागत, भारतीय विद्या।

प्रस्तावना

प्रारम्भिक काल में कृषि पशुपालन और व्यापार आर्यों के मुख्य कर्म थे। कालान्तर में उनके विस्तार के साथ अनेकानेक उद्योग–धन्धों का भी विकास हुआ। वेदों में लगभग 400 व्रतियों (पेशा) का उल्लेख है।[2] आर्य अनेक प्रकार के अन्य उद्यमों मे संलग्न थे जिनमें हाथ के कौशल और कारीगरी की विशेष आवश्यकता पडती थी जिन्हें शिल्प उद्योग के नाम जाना जाता था। ऋग्वैदिक समाज में विभिन्न प्रकार के व्यवसायी व शिल्पी प्रकाश में आ चुके थे।[3] ऋग्वैदिक समाज में व्यवसायपरक जातियां उत्पन्न हो चुकी थी तथा उद्यमों का अपनाने की पर्याप्त स्वतंत्रता थी। ऋग्वेद के एक सूक्त[4] में एक ही परिवार के विभिन्न पेशे वालों की स्वाभाविक प्रवृतियों का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज का वर्गों में विभाजन मुख्यतः सामाजिक व आर्थिक संगठन की सुविधा के लिए था। उतर वैदिक काल तक आते–आते अनेक व्यवसायों व शिल्पों का न केवल विकास हुआ बल्कि वे सुदृढतापूर्वक विभिन्न वर्गों में संगठित होने लगे थे। यहां यह उल्लेखनीय है कि तत्कालीन समाज में शिल्प और उद्योग को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।[5]

वस्त्र निर्माण कलाः–वैदिक काल में वस्त्र निर्माण कला काफी उन्नत दशा में थी। कपडा बुनने वाले (जुलाहे) को वाय कहा जाता था जो विविध प्रकार के वस्त्र बुना करता था[6]। अद्योवस्य की संज्ञा वास थी उसे बुनने वाले को वासोवायें कहते थे [7]। वस्त्र निर्माण में ताने–बाने का उपयोग होता है। ताने का तन्तु और बाने को ओतु कहा जाता था। अथर्ववेद में रात और दिन को दो युवतियों दिन और रात वर्ष का ऐसा ताना–बाना बुनती है जिसका कभी अन्त नहीं होता [8]। इस काल में सूती वस्त्र का उल्लेख नहीं मिलता यद्यपि उन व रेशम का प्रयोग इस काल में वस्त्र बनाने के लिए किया जाता था। इस काल में गान्धार प्रदेश की ऊन सबसे अधिक प्रसिद्ध थी [9]। ऋग्वेद के एक सूक्त में कहा गया है कि माताएं अपने पुत्रों के लिए वस्त्र बुनती है [10]तथा जैसे सृष्टि का कार्य 101 मंत्रों (देवकर्म) से चल रहा है वैसे ही ताने में 101 तन्तु या धागों का वितान किया जाता था [11]।' ताना बुनने के स्थान या करण घर के लिए 'सदस' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस काल में कपडा बुनने के अतिरिक्त उसकी रंगाई और कढाई का काम भी होता था[12]।

बढईगीरी

वैदिक काल में बढईगीरी का कार्य उचे दर्जे का समझा जाता था। बढई का कार्य लकडी ये विविध प्रकार की वस्तुएं बनाना था। वैदिक काल में बढई के लिए तक्षा शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। वैदिक तक्ष शब्द से तलक बना है जो लकडी पत्थर तथा ईंटों को भवन निर्माण हेतु तैयार करता था। तक्षा के महत्वपूर्ण कार्यों में किसानों के लिए हल आदि खेती के औजारों के अलावा रथ तथा अन्य वाहन बनाना भी थे। ऋग्वेद में 100 परिवार वाले पोतों व नावों का वर्णन है 13जो तक्षा की शिल्प कला से ही निर्मित होते थे। ऋग्वेद के एक मन्य में रथ व अनस का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में ही रथ के विभिन्न भागों का उल्लेख भी मिलता है जैसे – अक्ष (धुरा) चक्र, अर (पहिये के डण्डे) नम्य (नाह प्राधि (पहिये का बाहरी गोल भाग नेमी (प्राधि के उपर चढा हुआ गोल चक्का,बन्दूर या गर्त (रथ के भीतर बैठनेका स्थान) ईषा (रथ के अग्र भाग का अगला डण्डा) रथवाहन, रथमुख इत्यादि [14]। अनस एक साधारण गाडी थी जो कच्चे पक्के रास्तों पर जा सकती थी। अनस की तुलना में रथ अधिक परिष्कृत वाहन होता था [15]। उसके निर्माण के अधिक उन्नत शिल्प अपेक्षित था। इसलिए इस काल में तक्षा का एक अलग वर्ग बन गया था जिससे रथकार कहते थे। अनस व रथ के अलावा अनेक प्रकार की आसंदियां (कुर्सियां व चौकियां) तथा उठने–बैठने के अन्य उपकरण भी इस काल में बढईयों द्वारा बनाये जाते थे [16]।

लोहार

बढई के काष्ठ शिल्प को भांति वैदिककाल में क्मार या लोहार के पेशे का भी उल्लेख है। कहा है कि जैसे लोहार अपनी भटठी के सामने बैठकर धातुओं को गलाता है। वैसे ही ब्रह्मणास्पति प्रजाति सब देवताओं के रूप को ढालता है [17]। ऋग्वेद में काषणामस (लोहा या तांबा) रजत (चांदी) त्रपु (टिन) आदि धातुओं का ज्ञान होता है। असु लोग लोहे के बाण, खडग, भाला व अन्य वस्तुओं को बनाने में दक्ष थे [18]। एक अन्य मंत्र में लोह निर्मित सौ इस काल में लोहे से खेती के औजार व युद्ध संबंधी हथियार बनाये जाते थे [19]। ऐसे नगरों का भी उल्लेख है [20]। कुशल शिल्पी एवं कारीगरों द्वारा निर्मित अश्यममयी तथा 'आयसी' दुर्गी के उल्लेख मिलते हैं [21]। कर्मार द्वारा तैयार वस्तुओं की बहुत अच्छी कीमत प्राप्त होती थी।

इससे आभास होता है कि कर्मार वर्ग अपनी कला में दक्ष हो गया था। लोह चांदी टिन आदि धातुओं के अलावा वैदिक साहित्य में सुवर्ण या हिरण्य का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। ऋगवेद में हिरण्यकार शिल्पी का निर्माण करता था [22]। विवाहों के अवसरों पर निषक (गले का हार) कुतीर (भोग टिका) कुम्ब सिर का आभूषण, कारण–शोभम, ओपश (सिर के उपर का अलंकरण) इत्यादि अनेकानेक स्वर्ण आभूषणों से बने हुए गहने लोग पहनते थे [23]। कुमारी अपने केशों को 'कुरीर' बांधती थी जो 'कुल्फीनुमा' गहना था [24]।

कुलाल वर्ग (कुम्हार का नाम भी कला शिल्प के रूप में उल्लेख है जो मिट्टी के सुन्दरतम बर्तनों को बनाता था। ऋग्वेद में घरेलू भांडों के नामों का उल्लेख है जैसे–अमत्र (हांडी), उखा (कडाही), अवाह (डोल), उदच्चयन (गगरी), क्रंस (कांसे कर भिगोना) कलस, कुम्भ, द्रोणकलश, चमस (कहोश), चरू, (ओटनी का बडा कडा), हति (चर्मपाम जिसके पानी का दूध भी भरा जाता था सूर्प (सूपा परिणहा (छींका मणिक पानी के लटकाने का बर्तन, सुशिरा, सुर्मि (छेदने का वर्मा, दृष्ट (पीसने का सिल इत्यादि [25]से इस काल के कुम्हार शिल्प द्वारा निर्माणित ग्रहस्थ संस्कृति का पता चलता है। पुरातरिवक उत्खनन से इस काल के मृदभांडों से भी कुम्हार शिल्पी की कला कुशलता का परिचय मिलता है।

चमडे का काम करने वाले को ऋग्वेद में चर्मम्न कहा गया है। चमडे को रंगकर उससे अनेक प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती थी [26]। अर्थर्ववेद में हिरण के अजिन (चर्म का उल्लेख मिलता है जिसका प्रयोग आख्मक आश्रमों में निवास करने वाले मुनिजन किया करते थे। शतपथ ब्राहमण में स्पष्ट रूप से मृग चर्म के वस्त्रों का उल्लेख है [27]। जूते बनाने के लिए वराह (सूअर के चमडे को प्रयुक्त किया जाता था। शतपथ ब्राहमण में अनेक स्थानों पर ब्रहमा' उपानहों' का वर्णन है [28]। चमडे से बनने वाली वस्तुओं में प्रत्यंचा, रथ कसने की रस्सीयां, गोफना, चाबुक इत्यादि थे। बाजे भी चमडे से बनाये जाते थे [29]।

वैदिक साहित्य में वर्णित शिल्पों में चटाई बनाना भी एक शिल्प था। इसमें नड (नारकट को पत्थर से कूटकर प्रयुक्त किया जाता था। यह कार्य प्रायः स्त्रियां किया करती थी [30]।

यह कहना उचित होगा कि विवेच्य काल में कृषि एवं उत्पादन व्यवस्था के कारण आर्थिक परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन सम्भव हुए। यह युग शिल्प वाणिज्य के विकास का युग था जिसमें शिल्पी समुदाय की उपलब्धि विशेष रूप से स्पष्ट होती है। शिल्पीयों ने उन कलाओं का आविष्कार कर लिया था जो ऐतिहासिक युगों की कलाओं में पाये जाते हैं। विशेष शिल्पों में तक्षा, रथकार, कुम्भकार, लोहार, हिरणमकार एवं विषद के महत्वपूर्ण व्यवसाय विशिष्टीकरण का प्रारम्भ हो गया था। संगीत और नृत्य का भी प्रयास किया जाता था। समाज में प्रत्येक वर्ग को आत्मविकास की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी। श्रम को तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

अतः स्पष्ट है कि शारीरिक सौन्दर्य और भौतिक रूपों में उसकी अनुकृति से वैदिक युग के कलाविदों के सौन्दर्यबोध का परिचय प्राप्त होता है।

संदर्भ

1. यजुर्वेद –9.22
2. आचार्य कपिलदेव द्विवेदी–अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0– 158
3. ऋग्वेद – 10.26.6
4. ऋग्वेद– 1.112.3
5. तैतरीय संहिता–4.5.4.2.
6. सत्यकेतु विद्यालंकारः प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग पृ0–225
7. ऋग्वेद– 10.26.6
8. अथर्ववेद–10.7.42
9. के.डी.वाजपेयी– प्राचीन भारत का विदेशो से संबंध,पृ0– 35
10. ऋग्वेद– 5.47.6
11. वासुदेवसरन अग्रवाल– भारतीय काल पृ0– 55
12. के.डी. वाजपेयी– प्राचीन भारत का विदेशों से संबंध, पृ0– 56
13. के.डी. वाजपेयी– प्राचीन भारत का विदेशों से संबंध, पृ0–36
14. वासुदेवसरन अग्रवाल– भारतीय कला पृ0–56
15. सत्यकेतुविद्यालंकार– प्राचीनभारत का वैदिक युग पृ0–228
16. सत्यकेतुविद्यालंकार– प्राचीनभारत का वैदिक युग पृ0–228
17. ऋग्वेद–10.22.2
18. के.डी. वाजपेयी– प्राचीन भारत का विदेशों से संबंध, पृ0–36
19. अथर्ववेद– 5.57.2
20. ऋग्वेद– 7.3.7
21. के. डी. वाजपेयी–भारतीय वास्तुकला का इतिहास पृ0–36
22. ऋग्वेद–7.54
23. ऋग्वेद–2.33.10
24. ऋग्वेद–10.114.3
25. वासुदेवसरन अग्रवाल पृ0–56
26. के.डी. वाजपेयी– प्राचीन भारत का विदेशों से संबंध, पृ0–36
27. अथर्ववेद–5.217
28. शतपथ ब्राहमण–5.4.3.16
29. ऋग्वेद–6.75.11
30. सत्यकेतुविद्यालंकार–प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग पृ0–229